उदारीकरण, मज़दूर और ट्रेड यूनियनें

मारुति उद्योग में श्रमिक-संघर्ष

विकास कुमार

पिछले दो दशकों में दिल्ली और उसके आस-पास हुए औद्योगिक विस्तार के कारण इन क्षेत्रों में श्रम की परिस्थितियाँ तो बदली ही हैं, प्रबंध (नियोक्ता) और श्रमिकों के संबंधों में भी कई प्रकार के बदलाव आये हैं। साथ ही पूँजी तथा राज्य की बढ़ती भूमिका ने भी श्रमिक वर्ग के अधिकारों से जुड़े कई सवाल पैदा कर दिये हैं। हालाँकि श्रमिकों के लिए यह कोई नयी बात नहीं है, लेकिन ये परिवर्तन ख़ासी तेज़ गति से हुए हैं और उन्हें वैधता भी मिल रही है। कई ऐसी घटनाएँ हैं जिनके आईने में इन तब्दीलियों को देखा जा सकता है। मसलन, जुलाई, 2005 में होण्डा मोटरसाइकिल ऐंड स्कूटर इण्डिया के मज़दूरों द्वारा यूनियन-गठन की माँग के लिए की गयी हड़ताल पर पुलिस द्वारा लाठीचार्ज और यूनियन के नेताओं का निलम्बन; 2009 में छह सप्ताह तक रिको ऑटो श्रमिकों का संघर्ष और पुलिस कार्रवाई के दौरान श्रमिकों की मौतें; 2008 में नोएडा की

कार्लिकोन गार्ज़ियानो कम्पनी में नियोक्ता और श्रमिकों के संघर्ष में सीईओ की मौत; 2010 में साहिबाबाद स्थित एलाइड निपोन्न के कारख़ाने में प्रबंधकों और श्रमिकों के बीच हुए हिंसक संघर्ष में एक व्यक्ति की मौत; जून, 2011 में मारुति के श्रमिकों के द्वारा हड़ताल और फिर उसके बाद 18 जुलाई, 2012 को हुई हिंसा में मैनेज़र की मौत इत्यादि। ये सभी घटनाएँ श्रमिक संघर्षों का एक नया स्वरूप प्रस्तुत करती है। औद्योगिक हिंसा भारत के लिए नयी नहीं है। इसमें तीनों क्षेत्रों का हाथ रहा है। चाहे मज़दूर हों या उनके संगठन, नियोक्ता हों या ठेकेदार या फिर राज्य व उसकी एजेंसियाँ।[1] यह अध्ययन इन बदलती परिस्थितियों के संदर्भ में ट्रेड यूनियन की भूमिका, मज़दूर एवं उनके बीच के स्थापित संबंधों और ट्रेड यूनियन द्वारा जारी संघर्षों को समझने का प्रयास करता है।

ट्रेड यूनियन या श्रमिक संघ क्या है? ट्रेड यूनियन की आवश्यकता क्यों है? उदारीकरण और निजीकरण के दौर में ट्रेड यूनियन की क्या स्थिति है? राज्य, ट्रेड यूनियन एवं मैनेजमेंट के बीच इस दौर में किस प्रकार का संबंध है? हमारे इस अध्ययन के लिए इन प्रश्नों की पड़ताल आवश्यक है। नब्बे के दशक में वैश्विक प्रतिस्पर्धा और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के दबाव में नवउदारतावादी सुधार शुरू हुए। वैश्विक पूँजी के इशारे पर सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था के दरवाज़े खोलने की प्रक्रिया तेज़ कर दी। सरकार ने मज़दूर-हितों से ख़ुद को अलग कर लिया, जिसके कारण राजनीतिक सहायता पर निर्भर परम्परागत ट्रेड यूनियनों के सामने नये संकट पैदा हो गये। निजीकरण, ठेका मज़दूरी, ट्रेड यूनियन विरोधी माहौल, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की संख्या में इज़ाफ़े, रोज़गार संरचना व प्रबंधकीय व्यवहारों में आये आमूलचूल बदलावों ने भारतीय मज़दूरों और उनकी यूनियनों के लिए कई नयी समस्याएँ पैदा कर दीं। पहले ये श्रमिक संघ न केवल अपने अधिकारों के लिए लड़ते थे, बल्कि राजनीतिकरण की प्रक्रिया के वाहकों में से एक थे। विश्व-बाज़ार के बदलने के साथ ही अदालतों के फ़ैसलों और विधायी हस्तक्षेपों ने श्रमिक संघों को कमज़ोर करना शुरू कर दिया। आज़ादी के बाद का दौर जहाँ श्रमिकों को संगठित करके अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता तैयार करने वाला था, वहीं नब्बे के दशक में नयी आर्थिक नीतियों ने श्रमिक-अधिकारों का हनन करना शुरू कर दिया। यूनियनों का अस्तित्व व अधिकार ख़तरे में नज़र आने लगे। इसी दौर में अदालतों ने कुछ ऐसे फ़ैसले दिये जो श्रमिकों को यूनियन बनाने के अधिकार से वंचित करते हैं। किसी यूनियन को मिली मान्यता उसके अस्तित्व और सत्ता का बुनियादी पहलू होता है, लेकिन यूनियन का पंजीकरण श्रमिक संगठनों पर राजकीय नियंत्रण का सबसे महत्त्वपूर्ण उपादान बना दिया गया, हालाँकि श्रमिक संघ क़ानून, 1926 के तहत श्रमिक-संगठन के पंजीकरण एवं सत्यापन की व्यवस्था है।[2] भारतीय संविधान में प्रदत्त इस अधिकार को अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में पारित अधिनियमों के अनुरूप मान्यता भी है। भूमण्डलीकरण के दौर में एक तरफ़ जहाँ नियोक्ता द्वारा श्रमिकों का शोषण बढ़ रहा है, वहीं दूसरी तरफ़ यूनियन बनाने के उनके अधिकारों में भारी कटौती की जा रही है। क़ानूनी हैसियत पाने और उसके ज़रिये सामूहिक सौदेबाज़ी का अधिकार प्राप्त करने के लिए पंजीकरण और सत्यापन का दस्तावेज़ हासिल करना यूनियनों के लिए बहुत ज़रूरी है।

भारत में ट्रेड यूनियन की उत्पत्ति और विकास

ट्रेड यूनियन क्या है? ग्रेट ब्रिटेन में ट्रेड यूनियन ऐक्ट के अंतर्गत इसकी क़ानूनी परिभाषा में ट्रेड यूनियन के साथ-साथ नियोक्ता भी शामिल होता है। कुछ प्रमुख नियोक्ता निकाय क़ानून के अंतर्गत ट्रेड

---

[1] के.आर. श्याम सुंदर (2013), 'इंडस्ट्रियल वायॅलेंस ऐंड लेबर रिफ़ॉर्म', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 48. अंक 41 : 35-40.

[2] *द ट्रेड यूनियन ऐक्ट* (1926), *बेयर ऐक्ट* (2010), यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नयी दिल्ली : 5-7.

मज़दूरों का दमन ही नहीं हुआ, बल्कि जाँच के ख़त्म होने के बहुत पहले ही इसकी पूरी ज़िम्मेदारी मज़दूरों पर डाल दी गयी। ... इतने बड़े पैमाने पर पुलिस ने कार्रवाई इसलिए की कि मारुति के मज़दूर, मानेसर और गुड़गाँव इंडस्ट्रियल एरिया के दूसरे मज़दूर भविष्य में किसी भी प्रकार के आंदोलन करने की हिम्मत न जुटा पाएँ। दूसरी तरफ़ इस संघर्ष की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यहाँ के स्थायी और ठेका मज़दूरों की बेमिसाल एकता रही है।

यूनियन के तौर पर पंजीकृत हैं। लेकिन एक सामान्य समझ के अनुसार ट्रेड यूनियन का अर्थ श्रमिकों के संघ से है जिसमें ज़्यादातर नौकरीपेशा श्रमिक सदस्य होते हैं। एक संघ के तौर पर इसका मक़सद अपने सदस्यों के दैनिक कार्य से संबंधित आर्थिक हित सुरक्षित एवं विस्तारित करना होता है।[3] सभी ट्रेड यूनियनों की पहली और मुख्य ज़िम्मेदारी अपने सदस्यों का कल्याण होता है न कि फ़र्म, उद्योग तथा देश का। उनकी प्रमुख गतिविधि अपने सदस्यों की तरफ़ से प्रबंधक, व्यवसायी समूहों तथा नियोक्ता से 'सामूहिक सौदेबाज़ी' करना है।[4] सिडनी व बेट्रीस वेब की मान्यता है कि ट्रेड यूनियन मज़दूरी कमाने वाले श्रमिकों का संगठन है जो लगातार अपने उद्देश्यों तथा कामकाजी जीवन की परिस्थितियों में सुधार के लिए कार्य करता है।[5] अट्ठारहवीं सदी के अंतिम दशक में ट्रेड यूनियन तत्कालीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उभरे औपचारिक रूप से संगठित निकाय थे। शुरुआती दिनों में ये संगठन 'फ्रेंडली क्लब्ज़ ऑफ़ जरनी मैन ' के रूप में किसी एक स्थान पर मीटिंग करते थे। इन क्लबों में सामाजिक बातचीत के साथ-साथ अपने सदस्यों के रोज़गार की परिस्थितियों, मज़दूरी की दरों तथा काम के घण्टों इत्यादि पर बहस होती थी। ग्रेट ब्रिटेन में 'ट्रेड यूनियन' नाम का इस्तेमाल पहली बार इस प्रकार के छोटे क्लबों के मिले-जुले कामों के लिए किया गया जिसका मक़सद मुख्यतः उस इलाक़े के मज़दूरों का हित-साधन करना था। उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में ट्रेड यूनियनें ट्रेड क्लबों से कुछ अधिक हो गयीं। इस समय मुख्यतः तीन प्रकार की ट्रेड यूनियनें सक्रिय थीं। क्राफ़्ट यूनियन, इंडस्ट्रियल यूनियन तथा सामान्य यूनियन।[6] एक प्रकार से ट्रेड यूनियन

---

[3] जी.डी.एच. कोल (1953), *ऐन इंट्रोडक्शन टू ट्रेड यूनियनिज़म,* जॉर्ज ऐलन ऐंड अनविन, ग्रेट ब्रिटेन : 13.

[4] वही : 14.

[5] सिडनी वेब और बेट्रिस वेब (1956), द *हिस्ट्री ऑफ़ ट्रेड यूनियनिज़म,* लांगमेंस ग्रिन ऐंड कम्पनी, लंदन : 1.

[6] जी.डी.एच. कोल, वही : 76-88.

स्वैच्छिक संगठनों जैसी है। उनका मुख्य उद्देश्य लोकतांत्रिक व्यवहारों को मजबूत करते हुए अपने आप को आगे बढ़ाना होता है। कुछ विचारकों द्वारा ट्रेड यूनियन को आलोचनात्मक दृष्टि से भी देखा गया है। उनका कहना है कि एक संस्था के तौर पर ट्रेड यूनियन स्थापित वर्ग विभाजन को चुनौती नहीं देती। केवल इसका दावा करती है। इन आलोचकों का कहना है कि ट्रेड यूनियन अपने आप में समाजवाद की तरफ़ बढ़ने का अच्छा साधन नहीं हो सकती क्योंकि वह अपनी प्रकृति में पूँजीवाद से जुड़ी हुई है। यह केवल सौदेबाज़ी कर सकती है, परंतु बदलाव नहीं कर सकती।[7]

भारत में ट्रेड यूनियन औद्योगिक संबंध का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। औद्योगिक संबंध केवल नियोक्ता और कामगार (श्रमिक) के बीच का ही मुद्दा नहीं है, इसका बृहत्तर संबंध पूरे समुदाय से है। औद्योगिक शांति के महत्त्व को समझते हुए सरकार ने समय-समय पर कई सारे महत्त्वपूर्ण क़ानून पारित किये हैं जिनका उद्देश्य नियोक्ता और श्रमिक के संबंधों को बेहतर बनाना है। ऐसा ही एक कानून ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926 है जो श्रमिकों को फ़ैक्टरी के अंदर कुछ अधिकार प्रदान करता है। श्रमिक को नियोक्ता के समक्ष सामूहिक सौदेबाज़ी का अधिकार देने से इस क़ानून के तहत उनकी माँगों को वास्तविक रूप मिलने की सम्भावना मिलती है।

भारत में उद्योगीकरण की शुरुआत मुख्यतः 1850 के दशक में हुई। रेल परिवहन के साथ ही बंगाल, बम्बई तथा अन्य शहरों में जूट, सूती कपड़ा तथा कोयला उत्खनन जैसे उद्योगों का आविर्भाव हुआ। इसका उद्देश्य ब्रिटिश बाज़ार से निर्मित वस्तुओं का आयात करना था। इससे पहले 1834 में इस प्रक्रिया की शुरुआत चाय उत्पादन से हो चुकी थी। 1851 में सूती कपड़ों के मिल और 1855 में जूट मिल की स्थापना हुई।[8] 1870 का दशक आते-आते श्रमिकों द्वारा काम के घण्टे निर्धारित करने, दोपहर के भोजन के समय में बढ़ोतरी, महिलाओं की स्थिति सुधारने तथा बच्चों को कार्यस्थल से दूर रखने से जुड़ी आवाज़ें उठने लगीं। 1875 में बंबई में पहला फ़ैक्टरी ऐक्ट सरकार द्वारा पारित किया गया।[9] श्रमिकों द्वारा मज़दूरी तथा काम के घण्टों को लेकर संघर्ष चलता रहा। समय-समय पर फ़ैक्टरी ऐक्ट में भी संशोधन होते रहे। लेकिन इसके बावजूद किसी प्रकार के ट्रेड यूनियन आंदोलन का उदय नहीं हुआ।

भारत में ट्रेड यूनियनों के उदय और विकास का इतिहास राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ही जुड़ा हुआ है। 1890 में एक मज़दूर एन.एम.लोखंडी ने बॉम्बे मिल-हैण्ड्स एसोसिएशन की स्थापना की जो भारत का पहला श्रमिक संगठन था। इसके अलावा 1890 में इण्डियन फ़ैक्टरी लेबर कमीशन और 1892 में रॉयल कमीशन ऑन लेबर का गठन हुआ।[10] उसके पश्चात् 1905 में कलकत्ता में प्रिंटर्स यूनियन तथा 1907 में बॉम्बे में पोस्टल यूनियन की स्थापना हुई। लेकिन इसके बावजूद ट्रेड यूनियनों के गठन तथा आंदोलन में कुछ ख़ास बढ़ोतरी नहीं हुई। 1875 से 1918 के बीच में जो भी यूनियनें तथा एसोसिएशनें बनीं, वे ज़्यादातर अपनी समस्याओं के समाधान के लिए संवैधानिक तरीक़ों पर आधारित थीं। इस दौर की सबसे बड़ी ख़ासियत थी श्रमिकों द्वारा अपनी समस्याओं और माँगों के लिए हड़ताल को एक औज़ार के रूप में प्रयोग न करना। दरअसल, इस दौरान हड़तालों की संख्या नाम मात्र की ही थी। यह समय ट्रेड यूनियन आंदोलन की शुरुआत तथा सामाजिक कल्याण के रूप

---

[7] पैरी एंडरसन (1978), 'द लिमिट्स ऐंड पॉसिबिलिटीज़ ऑफ़ ट्रेड यूनियन एक्शन', टॉम कलार्क और लौरी कलेमेन्टस (सम्पा.), *ट्रेड यूनियन अंडर कैपिटलिज़्म*, द हारवेस्टर प्रेस, ससेक्स : 333-350.

[8] वी.बी. सिंह (1965), 'ट्रेड यूनियन मूवमेंट', वी.बी. सिंह (सम्पा.) *इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया* 1857-1957, एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई : 563.

[9] हेरॉल्ड क्रॉउच (1979), *इण्डियन वर्किंग क्लास*, सचिन पब्लिकेशन, अजमेर : 57-58.

[10] वी.बी. कार्णिक (1966), *इण्डियन ट्रेड यूनियंस : ए सर्वे*, मनकटलस, बम्बई : 7.

विश्व-बाज़ार के बदलने के साथ ही अदालतों के फ़ैसलों और विधायी हस्तक्षेपों ने श्रमिक संघों को कमज़ोर करना शुरू कर दिया। आज़ादी के बाद का दौर जहाँ श्रमिकों को संगठित करके अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता तैयार करने वाला था, वहीं नब्बे के दशक में नयी आर्थिक नीतियों ने श्रमिक-अधिकारों का हनन करना शुरू कर दिया। यूनियनों का अस्तित्व व अधिकार ख़तरे में नज़र आने लगे।

में थी। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान बड़ी संख्या में उद्योगों का विकास हुआ और इसके साथ ही श्रमिक वर्ग की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को अनाज की कमी और महँगाई की वृद्धि का सामना करना पड़ा। दूसरी तरफ़ मज़दूरों के वेतन में कटौती की गयी। इन हालात ने श्रमिकों के अंदर आक्रोश पैदा किया जिसने बंबई एवं कलकत्ता में उग्र रूप ले लिया। सितम्बर और अक्टूबर, 1917 में बॉम्बे टेक्सटाइल मिल में तीस से अधिक हड़तालें हुईं। दूसरी तरफ़ कलकत्ता में जूट श्रमिकों ने मज़दूरी कम करने के ख़िलाफ़ हड़ताल शुरू कर दी। यही हालत मद्रास में भी थी। इन सबके फलस्वरूप सर्वप्रथम अप्रैल 1918 में मद्रास में बी.पी. वाडिया ने मिल मज़दूरों के साथ मिलकर मद्रास लेबर यूनियन का गठन किया।[11] इसके पश्चात् 1918 में टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन बनी जो मज़दूर महाजन के नाम से जानी जाती है। अक्टूबर, 1920 में राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों के लिए पहली बार ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) का गठन किया गया। इसके पहले अध्यक्ष बाल गंगाधर तिलक बने। परंतु इन यूनियनों को अभी भी क़ानूनी मान्यता प्राप्त नहीं थी।

1 मार्च, 1924 को इण्डियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली ने भारत में ट्रेड यूनियनों के पंजीकरण की व्यवस्था लागू करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। इसी की रोशनी में तत्कालीन ब्रिटिश भारतीय सरकार ने सितम्बर, 1924 में एक मसविदा विधेयक प्रकाशित किया। इस विधेयक के अनुसार जो संगठन कुछ ख़ास शर्तों पर खरे उतरेंगे वे ट्रेड यूनियन के रूप में पंजीकरण करवा सकते हैं। पंजीकरण करवाने के बाद यूनियन और उसके सदस्यों को दीवानी और फ़ौजदारी के कुछ मामलों में एक हद तक ज़िम्मेदारी से मुक्त समझा जाना था। 25 मार्च, 1926 को भारतीय ट्रेड यूनियन विधेयक को मंजूरी दी गयी। 1 जून, 1927 से भारतीय *ट्रेड यूनियन ऐक्ट*, 1926 (1926 का 38) के माध्यम से

---

[11] वी.बी. कार्णिक, वही : 25.

'भारतीय' शब्द को इस अधिनियम के नाम में से हटा दिया गया। फलस्वरूप इस क़ानून का नाम ट्रेड यूनियन ऐक्ट, 1926 हो गया।[12]

1930 तक आते-आते विभिन्न विचारधाराओं एवं बृहद् आधार वाले एटक में बिखराव की स्थिति उत्पन्न होने लगी। एटक में विचारधारा के स्तर पर साम्यवादी समूह श्रीपाद अमृत डांगे तथा मानवेंद्र नाथ रॉय के नेतृत्व में था। एटक के सुधारवादी समूह में एन.एम.जोशी व वी.वी.गिरि थे। इसके अलावा तीसरा समूह राष्ट्रवादियों का था जिसमें लाला लाजपत राय तथा जवाहरलाल नेहरू शामिल थे। 1929 में औपनिवेशिक सरकार ने श्रमिकों से संबंधित विषयों के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जिसके चेयरमैन लार्ड व्हिटले थे। इस कमीशन का गठन भारत में श्रमिकों की स्थिति व समस्याओं का अध्ययन कर इसमें सुधार के लिए क़ानूनों की सिफ़ारिशें देना था। लेकिन विभिन्न विचारधारा में विभाजित एटक में इस कमीशन को लेकर गतिरोध उत्पन्न हो गया। 1931 में कलकत्ता अधिवेशन में एटक से साम्यवादी समूह ने संबंध-विच्छेद कर रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन किया। लेकिन 1934 में यह समूह दोबारा एटक में शामिल हुआ। इस सांगठनिक विभाजन के बावजूद 1937 में बंगाल की जूट मिलों और कानपुर की कपड़ा मिलों में वेतन कटौती के ख़िलाफ़ तथा रेलवे में छँटनी तथा वेतन कटौती के ख़िलाफ़ एक के बाद एक हड़तालें हुईं जिसमें सभी मज़दूरों ने हिस्सा लिया।

मज़दूर आंदोलन में पहली बड़ी टूट 1947 में हुई जब कांग्रेस पार्टी के प्रभाव वाला गुट एटक से निकल गया। इस गुट ने इण्डियन नैशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (इंटक)का गठन किया। इसके बाद समाजवादियों और रॉयवादियों ने 1948 में हिंद मज़दूर पंचायत और इण्डियन फेडेरेशन ऑफ़ लेबर के विलय के साथ ही हिंद मज़दूर सभा (एचएमएस) का गठन किया। 1949 में रेवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी (आरएसपी) के कार्यकर्ताओं ने, जो पहले हिंद मज़दूर सभा और एटक में शामिल थे (ये स्तालिन के आलोचक थे परंतु ख़ुद को ट्रॉट्स्कीवादी नहीं बुलाना चाहते थे)[13], इनसे अलग होकर यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (यूटीयूसी)की स्थापना की।[14] यूनाइटेड ट्रेड कांग्रेस ने वर्ग-विहीन राज्य और यूनियंस को ग़ैर-दलीय बनाये रखने की बात कही। इसके बहुत सारे समर्थक रेवॉल्यूशनरी पार्टी के सदस्य थे जिसका मुख्यालय कलकता में है। भारतीय मज़दूर संघ (बीएमएस) का गठन 1955 में हिंदुत्ववादियों (जनसंघ) ने किया। 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इण्डिया (मार्क्सवादी) ने एटक से निकल कर सेंटर ऑफ़ इण्डियन ट्रेड यूनियंस (सीटू) का गठन किया। 1971 में जब अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन और कुछ अन्य यूनियनों ने नैशनल लेबर ऑर्गेनाइज़ेशन (एनएलओ) के नाम से एक और फेडरेशन बना ली तो इंटक भी टूट गयी। 1981 में जॉर्ज फ़र्नाडीज़ ने हिंद मज़दूर सभा से अलग होकर हिंद मज़दूर किसान पंचायत का गठन किया। इसके अलावा राष्ट्रीय स्तर पर आज हिंद मज़दूर किसान पंचायत, यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (यूटीयूसी), ट्रेड यूनियन कोऑर्डिनेशन सेंटर (टीयूसीसी), नैशनल फ्रंट ऑफ़ इण्डियन ट्रेड यूनियंस (एनएफ़आईटीयू)

---

[12] द ट्रेड यूनियन ऐक्ट, वही : 1-2. इस क़ानून में कई बार संशोधन हो चुके हैं. हालिया संशोधन ट्रेड यूनियन (संशोधन) अधिनियम, 2001 के रूप में हुआ. इसके अनुसार यह तय किया गया कि अगर किसी संस्थान के 10 प्रतिशत या 100 (जो भी कम हो) मज़दूर किसी संगठन के सदस्य हैं तो वह संगठन ट्रेड यूनियन के रूप में पंजीकरण के लिए आवेदन दे सकता है. आवेदन की दूसरी शर्त यह भी रखी गयी कि संगठन के कम से कम सात सदस्य उस प्रतिष्ठान या उद्योग में नौकरी करने वाले होने चाहिए जहाँ वह ट्रेड यूनियन सक्रिय है. अगर कोई संगठन इन शर्तों को पूरा करता है तो वह पंजीकरण के लिए आवेदन दे सकता है.

[13] रोहणी हेंसमैन (2011), *वर्कर्स, यूनियन ऐंड ग्लोबल कैपिटलिज़्म : लैसंस फ्रॉम इण्डिया,* तूलिका बुक्स, नयी दिल्ली : 105-106.

[14] शरित के. भौमिक (1966), 'स्टेट इंटरवेंशन ऐंड द वर्किंग क्लास मूवमेंट', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 31, अंक 52 : 39-43.

कुछ विचारकों द्वारा ट्रेड यूनियन को आलोचनात्मक दृष्टि से भी देखा गया है। उनका कहना है कि ... ट्रेड यूनियन अपने आप में समाजवाद की तरफ़ बढ़ने का अच्छा साधन नहीं हो सकती क्योंकि वह अपनी प्रकृति में पूँजीवाद से जुड़ी हुई है। यह केवल सौदेबाज़ी कर सकती है, परंतु बदलाव नहीं कर सकती।

जैसे कुल मिलाकर 12 से ज़्यादा राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन संगठन मौजूद हैं। इसके अलावा कई क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भी अपनी क्षेत्रीय ट्रेड यूनियनें हैं। इसके अलावा अस्सी और नब्बे के दशक में नागरिक और लोकतांत्रिक अधिकारों को मजबूत करने वाले स्वतंत्र संगठनों का उदय हुआ जिन्होंने ट्रेड यूनियनों के साथ मिल कर मज़दूरों का संघर्ष मज़बूत किया।

अस्सी और नब्बे के दशक से ही भारत में असंगठित क्षेत्र का विकास तेज़ी से होना शुरू हो चुका था। राजनीतिक दलों द्वारा समर्थित यूनियनें इस क्षेत्र में काम कर रहे मज़दूरों के मसलों को उठाने से कतरा रही थीं। ये यूनियनें नीतियों और कार्रवाइयों के संदर्भ में अपना फ़ैसला लेने की स्वायत्तता खो चुकी थीं। इसी दौरान भारत में स्वतंत्र यूनियनें एक मजबूत और बड़ी संख्या में मज़दूरों की प्रतिनिधि बन कर उभरीं। स्वतंत्र यूनियनें इस मायने में महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्होंने श्रम के औपचारिक व अनौपचारिक (अर्थात् घरेलू काम, स्त्री-श्रम इत्यादि) क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों के विषयों को अपने संघर्ष का आधार बनाया। लेकिन इस दौर में मज़दूरों के लिए सबसे बड़ी समस्या इन तमाम ट्रेड यूनियनों के बीच विश्वास की कमी और उनकी आपसी प्रतिद्वंद्विता रही। इसने मज़दूरों के संघर्ष को न केवल कमज़ोर बनाया बल्कि नुक़सान भी पहुँचाया है। एक सवाल यह भी बना रहा है कि आज की ट्रेड यूनियनें अर्थवाद से बुरी तरह से ग्रस्त हैं। आर्थिक माँग के लिए संघर्ष करना अर्थवाद नहीं है, परंतु जब संघर्ष केवल आर्थिक माँग के लिए होता है और बाक़ी तमाम राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सवालों को ताक पर रख दिया जाता है तब इस प्रकार की नीति को अर्थवाद कहा जाता है। आज की ट्रेड यूनियनें ऐसे ही रास्ते पर चल रही हैं।[15]

---

[15] अनिल सद्गोपाल और श्याम बहादुर 'नम्र' (सम्पा.) (1993), *संघर्ष और निर्माण : शहीद शंकर गुहा नियोगी और उनका नये भारत का सपना,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 200.

ट्रेड यूनियन, असंगठित श्रम और श्रमिक-संघर्ष

भारत के श्रमिक दो क्षेत्रों में विभाजित हैं : एक संगठित क्षेत्र तथा दूसरा असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र। भारत में 'अनौपचारिक क्षेत्र' को 'असंगठित क्षेत्र' के रूप में परिभाषित किया जाता है, अर्थात् वह उद्यम जो राज्य द्वारा संचालित (नियमित) नहीं होते।[16] 1972 में पहली बार अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) में अनौपचारिक क्षेत्र का प्रयोग किया गया जिसमें सभी अपंजीकृत और बड़ी संख्या में चल रही लघु स्तर की आर्थिक गतिविधियाँ शामिल हो गयीं। यह बात अलग है कि अनौपचारिक क्षेत्र की परिभाषा को लेकर एक बहस चलती रही है। नैशनल कमीशन ऑन द इंटरप्राइजेज़ इन द अनऑर्गनाइज़्ड सेक्टर की 2008 की रपट के अनुसार, अनौपचारिक क्षेत्र का अर्थ इस तरह परिभाषित किया गया : 'असंगठित क्षेत्र के सभी अनगिनत निजी उद्यम जो किसी व्यक्ति या परिवार (हाउसहोल्ड) की मिल्कियत के तहत आते हों और जिनमें स्वामित्व या साझेदारी के आधार पर बिक्री और सेवाओं के उत्पादन में दस से भी कम श्रमिक लगे हुए हों।'[17] अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की हाल की रपट अनौपचारिक क्षेत्र को लेकर काफ़ी आशावादी है। इसके अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र अब 'लाखों लोगों के लिए सम्भावित रोज़गार व आय प्रदान करने के लिए खड़ा है, वरना तो लाखों लोगों के लिए जीवन के साधन का अभाव हो जाता' या इसने 'बड़े (जन) स्तर पर उद्यमों के फैलाव (या विस्तार) के लिए ज़मीन तैयार की है।' अनौपचारिक क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित होने से नयी बात यह हुई है कि 'परम्परागत-आधुनिक' से ध्यान हट कर 'अनौपचारिक-औपचारिक' पर हो गया है।[18] 1993 में इंटरनैशनल कांफ्रेंस ऑफ़ लेबर स्टेटीशियंस (आईसीएलएस) के अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र वह है जो नियोक्ता, कामगार और स्व-रोज़गारित श्रमिक, जो अपंजीकृत उद्यम में शामिल है, से संबंधित है। यह सभी ग़ैर-पंजीकृत श्रम अनौपचारिक श्रम है जिसमें कर्मचारी और स्व-रोज़गारित श्रमिक दोनों आते हैं, चाहे वह औपचारिक क्षेत्र में हो या अनौपचारिक क्षेत्र में हो।[19] कल्याण सान्याल का मानना है कि अनौपचारिक क्षेत्र रोज़गार प्रदान करने का एक साधन है जिसे समर्थन देने की आवश्यकता है। हालाँकि दूसरी तरफ़ उनका यह भी कहना है कि अनौपचारिक क्षेत्र पूँजीवादी विकास का ही परिणाम है। अनौपचारिक क्षेत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शहरी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत छोटे स्तर पर हो रहे वस्तुओं के उत्पादन की स्थिति औपचारिक पूँजीवादी क्षेत्र के साथ जुड़ी रहती है। अर्थात् यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्व-रोज़गारी श्रमिकों या घरेलू श्रम द्वारा वस्तुओं का उत्पादन बाज़ार के लिए किया जाता है। इस तरह अनौपचारिक क्षेत्र केवल असंगठित क्षेत्र से ही जुड़ा हुआ नहीं है। श्रम का एक बहुत बड़ा हिस्सा, जो ठेका मज़दूर या कैजुअल श्रमिक बन कर काम कर रहा है वह भले ही संगठित क्षेत्र में कार्यरत हो, पर वह पूँजी के बाज़ार में अनौपचारिक श्रम का हिस्सा ही है। 'असंगठित / अनौपचारिक श्रमिक का अर्थ है अनौपचारिक क्षेत्र व परिवार (हाउसहोल्ड) में काम करने वाला श्रमिक जिसे नियोक्ता द्वारा सामाजिक सुरक्षा का लाभ प्राप्त नहीं है और जो स्थायी श्रमिक क्षेत्र से बाहर है, इसके अतिरिक्त औपचारिक क्षेत्र का वह श्रमिक जिसे नियोक्ता द्वारा रोज़गार व सामाजिक सुरक्षा का लाभ प्रदान नहीं किया जाता।' असंगठित क्षेत्र में स्त्री-श्रमिकों की संख्या ज़्यादा है।

---

[16] रोहणी हेंसमैन (2011), : 164.

[17] नैशनल कमीशन फ़ॉर एन्टरप्राइजेज़ इन द अनऑर्गनाइज़ड सेक्टर (2008), *रिपोर्ट ऑन डेफ़िनेशनल ऐंड स्टेटक्लि इश्यूज़ रिलेटिंग टू द इनफ़ॉर्मल इक्नॉमी,* भारत सरकार, नयी दिल्ली (अध्याय-2).

[18] कल्याण सान्याल (2007), 'रिथिंकिंग कैपिटिलिस्ट डिवेलेपमेंट : प्रिमिटिव एक्युमिलेशन', *गवर्नमेंटेलिटी ऐंड पोस्ट-कोलोनियल कैपिटलिज़म,* रॉटलेज़, नयी दिल्ली : 200-209.

[19] रोहणी हेंसमैन (2011), : 164.

इन दोनों क्षेत्रों के बीच समानता केवल यह है कि ये दोनों श्रमिक प्रधान हैं। परंतु इनमें सबसे बड़ा अंतर श्रमिक अधिकारों, क़ानून के प्रयोग, न्याय एवं संविधानगत मौलिक अधिकारों में है। अर्थात् संगठित क्षेत्र में श्रमिकों के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए तथा क़ानून के पालन हेतु श्रमिकों की यूनियनें हैं। परंतु असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों की कोई यूनियन न होने के कारण इन्हें श्रम क़ानूनों की सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। जनवरी, 2005 के आँकड़ों के अनुसार भारत में विभिन्न कार्य-स्थलों पर अर्थात् संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 45.9 करोड़ थी। जिसमें से लगभग 2.6 करोड़ श्रमिक संगठित क्षेत्र में थे। वहीं दूसरी तरफ़ 43.3 करोड़ श्रमिक असंगठित क्षेत्र में थे। असंगठित क्षेत्र के 43.3 श्रमिकों में से लगभग 26.8 करोड़ श्रमिक केवल कृषि क्षेत्र में थे। 2.6 करोड़ श्रमिक निर्माण क्षेत्र में एवं शेष विनिर्माण व सेवा क्षेत्र में कार्य कर रहे थे।[20] अर्थात् 85 प्रतिशत से अधिक श्रमिक असंगठित क्षेत्र से संबंधित हैं। नैशनल कमीशन ऑन द इंटरप्राइजेज़ इन द अनऑर्गनाइज़ड सेक्टर 2008 की रपट में असंगठित मज़दूरों की स्थिति का अध्ययन कर यह दावा किया कि भारत के श्रम बाज़ार में असंगठित क्षेत्र और संगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले अनौपचारिक मज़दूरों की संख्या 93 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है। संगठित क्षेत्र में केवल 7 प्रतिशत मज़दूर ही कार्यरत है। व्यापक तौर पर असंगठित क्षेत्रों के मज़दूर श्रमिक क़ानूनों के अंतर्गत नहीं आते। भारत के संविधान में श्रमिकों से संबंधित विषयों को समवर्ती सूची में रखा गया है। अर्थात् इसका अर्थ यह है कि केंद्र व राज्य, दोनों विधायिकाओं को यह शक्ति प्राप्त है कि वह इस संबंध में विधेयक पारित कर सकते हैं। अभी साठ से भी अधिक केंद्रीय क़ानून व राज्य स्तर के क़ानून श्रमिक संबंधी विषयों को अपने दायरे में समेटे हुए हैं।[21] श्रमिक क़ानूनों को बनाने के साथ यह गारंटी जुड़ी होनी चाहिए कि श्रमिकों के अधिकार सुरक्षित रहें तथा उन्हें शोषणयुक्त एवं अमानवीय तरीकों से कार्य करने के लिए मजबूर न किया जाए। क़ानूनों के क्रियान्वयन में अनियमितता तथा प्रशासन एवं ठेकेदारों द्वारा श्रमिक अधिकारों का हनन भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र और विधि के शासन से संबंधित कई प्रश्न उत्पन्न करता है।

असंगठित क्षेत्र से बिल्कुल भिन्न प्रकार के सवाल संगठित क्षेत्र में हैं। यहाँ श्रमिकों की स्थिति कमोबेश स्थिर और बेहतर है। इनके अधिकारों को क़ानून द्वारा सुनिश्चित किया गया है। ये श्रमिक विभिन्न केंद्रीय व प्रांतीय यूनियनों की सदस्यता रखते हैं जो समय-समय पर इन श्रमिकों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहते हैं। परंतु पिछले एक दशक से इस क्षेत्र के श्रमिकों को भी संविधान व क़ानून से प्राप्त अधिकारों के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है।

मारुति में श्रम की स्थिति और मज़दूरों का संघर्ष

मारुति उद्योग लिमिटेड की स्थापना सन् 1981 में गुड़गाँव में हुई थी। कम्पनी में उत्पादन का काम 1983 से शुरू हुआ। कई दशकों तक मोटर वाहनों के क्षेत्रों में मारुति का एकाधिकार रहा। आज मारुति के पास दो विनिर्माण इकाइयाँ हैं जिनमें से एक पुरानी इकाई गुड़गाँव में है और दूसरी मानेसर में 2006 में शुरू हुई थी। 1991 में उदारीकरण की नीति के तहत मारुति कम्पनी में सरकार की हिस्सेदारी कम होती चली गयी और सार्वजनिक क्षेत्र की यह कम्पनी पहले 'सम्मिलित क्षेत्र' और

---

[20] ये आँकड़े श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2010-11 से : 1.

[21] *भारतीय संविधान,* समवर्ती सूची संख्या 22 : ट्रेड यूनियंस; इंडस्ट्रियल ऐंड लेबर डिस्प्यूट्स; संख्या 23 : देखें, कमला शंकरन (2008),'लेबर लॉज ऐंड द वर्ल्ड ऑफ़ वर्क', जो कि कमला शंकरन तथा उज्ज्वल कुमार सिंह (सम्पा.) *टुवर्ड्स लीगल लिटरेसी : ऐन इंट्रोडक्शन टू लॉ इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 119-131.

फिर 2007 तक आते-आते पूर्णत: निजी कम्पनी में तब्दील हो गयी। सितम्बर, 2007 में मारुति उद्योग लिमिटेड का नाम बदलकर मारुति सुजुकी इण्डिया लिमिटेड कर दिया गया।

उत्पादन के क्षेत्र में मारुति को एक उन्नत और विकसित उद्यम के प्रतीक-स्वरूप प्रस्तुत किया गया। 2001 में गुड़गाँव प्लांट में पहली बार मारुति उद्योग कामगार यूनियन ने मज़दूरों के हालात और 'गुड कंडक्ट' संबंधी विवाद को लेकर टूल डाउन (हड़ताल) की। फिर 2007 में इसी प्लांट में मज़दूरों की स्वेच्छा सेवानिवृति के मुद्दे ने दुबारा प्रबंधन और मज़दूरों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर दी। ये संघर्ष इस बात का सबूत थे कि मारुति में श्रमिकों की स्थिति सही नहीं है और प्रबंधन इन संघर्षों को दबाने का प्रयास कर रहा है। 2011 में मारुति के मानेसर प्लांट में पुन: श्रमिकों ने नयी ट्रेड यूनियन की माँग उठाई जिसके बाद श्रमिकों की हड़ताल होने के कारण प्रबंधन के साथ संघर्ष की शुरुआत हो गयी।[22] 18 जुलाई, 2012 को मानेसर फ़ैक्टरी में सुपरवाइज़र और श्रमिकों के बीच बहस के बाद मानव संसाधन प्रबंधक (एच.आर. मैनेजर) की मौत ने प्रबंधकों और श्रमिकों को एक-दूसरे के मुक़ाबले सीधे तौर पर खड़ा कर दिया। यह संघर्ष समूचे भारत में चल रहे श्रमिक आंदोलनों के संदर्भ में कई सारे सवालों को नये सिरे से खड़ा करता है। जैसे श्रमिकों के लिए ट्रेड यूनियन का क्या महत्त्व है, नियोक्ता और श्रमिकों के बीच किस प्रकार का संबंध है, और श्रमिकों के लिए श्रम की परिस्थितियाँ अभी भी अमानवीय और शोषणकारी क्यों हैं ?

आर.सी. भार्गव ने अपनी किताब *द मारुति स्टोरी : हाउ अ पब्लिक सैक्टर कम्पनी पुट ऑन व्हील्स* में यही लिखा है कि 'उत्पादन का श्रेय हमारी उत्पादन-टीम को जाता है जिसने उत्पादन-प्रणाली में इतने नये परिवर्तन कर दिये कि 2010-2011 में हमारी बिक्री 12.7 लाख कारों तक पहुँच गयी जो कि पिछले साल की 10.2 लाख कारों की बिक्री के मुक़ाबले 25 प्रतिशत ज़्यादा है। निर्माण क्षमता में बिना किसी नये बदलाव के 2,50,000 अधिक कारों का निर्माण वास्तव में एक उत्कृष्ट उपलब्धि है।'[23] यदि मारुति में उत्पादन की प्रक्रिया बिल्कुल सही चल रही थी और मज़दूरों के काम करने की परिस्थितियाँ उचित थीं, तो वे कौन से कारण थे जिन्होंने इतने मेहनती और लगनशील मज़दूरों को हड़ताल पर जाने के लिए मजबूर कर दिया। पिछले दो दशकों में हुई उत्पादन की बढ़ोतरी का एक कारण तो नयी तकनीक का प्रयोग है लेकिन इसमें मज़दूरों का भी बड़ा हाथ है। उत्पादन की बढ़ती प्रतिस्पर्धा और धीरे-धीरे मारुति के पूर्ण निजीकरण ने मज़दूरों के लिए फ़ैक्टरी के अंदर काम करने की परिस्थितियों में कई प्रकार के परिवर्तन किये। श्रम बचाने की आधुनिक तकनीक मज़दूरों को अत्यधिक कड़े श्रम से बचाने और काम और ज़िंदगी के हालात में सुधार लाने की जगह उन्हें और कठिन-अमानवीय श्रम की ओर धकेलती है। ऐसी पद्धति लाने व उसे चलाने के लिए ज़रूरी होता है कि मज़दूरों के संगठित होने व विरोध करने के अधिकारों का ख़ात्मा कर दिया जाए और पुराने संघर्षों से हासिल हुए सामूहिक सौदेबाज़ी और 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम में दिये गये शिक़ायत निवारण के सभी तरीक़े ख़त्म कर दिये जाएँ। एक प्रमुख परिवर्तन श्रम का अनौपचारिकीकरण था जिसके तहत ठेका मज़दूरों की संख्या में बढ़ोतरी होती चली गयी। ठेका मज़दूर की परिभाषा ने भी मैनेजमेंट और श्रमिक के बीच के संबंधों में परिवर्तन किया।

---

[22] *इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट,* 1947 के अनुसार लॉकआउट और हड़ताल में कुछ बुनियादी अंतर है— जैसे, लॉकआउट नियोक्ता द्वारा श्रमिकों को काम पर न आने देने के कारण होता है. इसे नियोक्ता अपनी सौदेबाज़ी के लिए प्रयोग करता है. जबकि हड़ताल से तात्पर्य किसी भी उद्योग में काम करने वाले नियोजित श्रमिकों द्वारा सामूहिक रूप में कार्य को रोक देना या सामूहिक रूप में मना कर देना अथवा साझा समझ के आधार पर ऐसे श्रमिकों की किसी भी संख्या द्वारा मना किये जाने से है.

[23] पीयूडीआर (2013), *शोषण का पहिया : मारुति सुजुकी इण्डिया लिमिटेड में मज़दूर संघर्ष और अधिकारों का हनन,* नयी दिल्ली : 5.

मारुति की मानेसर इकाई का स्टैंडिंग ऑर्डर (जिसके तहत सेवायोजन होता है) संरचनात्मक रूप से ही मज़दूरों के ख़िलाफ़ है। इसकी एक धारा कम्पनी को मनमाने तरीक़े से और नियमित रूप से 'शुरुआती काम' के बहाने मज़दूरों को उनके नियत समय से पहले काम पर बुलाने का अधिकार देती है। इसके मुताबिक़ यदि मज़दूरों को कोई शुरुआती काम करना हो या ऐसा काम करना हो जो उनकी शिफ़्ट या काम के पहले किया जाना ज़रूरी हो, तो उन्हें अपने काम के नियत समय से पहले आना होगा। मानेसर यूनिट के स्टैंडिंग ऑर्डर की इसी धारा में यह भी कहा गया है कि मज़दूर इस बात पर कोई आपत्ति नहीं करेगा और इस संदर्भ में प्रबंधन द्वारा जारी किये जाने वाले निर्देश का पालन करेगा। दरअसल, इस धारा का नियमित रूप से लागू किया जाना और मज़दूरों को नियमित रूप से समय से पहले काम के लिए बुलाया जाना 1948 के फ़ैक्टरी ऐक्ट का उल्लंघन है।[24]

मानेसर प्लांट की एक यूनिट में उत्पादन 2006 में शुरू हुआ। इस प्लांट में तक़रीबन 3500–4000 मज़दूर काम करते हैं जिसमें आधे से भी कम स्थायी हैं। बाकी कैज़ुअल, कॉन्ट्रेक्ट, और अपरेंटिस श्रेणी में काम कर रहे हैं। मानेसर प्लांट के कर्मचारियों ने जून, 2011 में गुड़गाँव यूनिट की मज़दूर यूनियन से अलग नयी यूनियन बनाने की माँग करके पुरानी यूनियन से अपनी सदस्यता समाप्त करने की बात कही। 2000 से ही पुरानी यूनियन किसी प्रकार के चुनाव के बिना चलाई जा रही थी, क्योंकि इस पर मैनेजमेंट का प्रभाव है। परंतु नयी यूनियन की माँग के बाद मैनेजमेंट ने चुनाव की घोषणा कर दी। 16 जुलाई को हुए इस चुनाव में मानेसर प्लांट के बहुत कम मज़दूरों ने हिस्सा लिया। नयी यूनियन की माँग को लेकर मानेसर के मज़दूरों ने जब काम रोका तो मैनेजमेंट ने 11 कर्मचारियों को बर्ख़ास्त कर दिया। इसके बाद 4 जून, 2011 से नयी यूनियन की माँग तथा बर्ख़ास्त मज़दूरों को बिना किसी शर्त वापस लेने की माँग के साथ हड़ताल हुई। इन मज़दूरों का यह भी कहना था कि गुड़गाँव मज़दूर यूनियन मैनेजमेंट के हितों के लिए कार्य करती है। 13 दिन की हड़ताल के पश्चात् समझौता हुआ जिसमें श्रम विभाग ने भी भागीदारी की। इसके अंतर्गत बर्ख़ास्त कर्मचारियों को वापस लिया गया और आश्वासन दिया गया कि नयी यूनियन की माँग की श्रम विभाग जाँच करेगा। लेकिन अगस्त के मध्य से मैनेजमेंट ने चार-चार कर्मचारियों को अनुशासनहीनता, लापरवाही तथा गुड कंडक्ट शपथपत्र के उल्लंघन का आरोप लगा कर कम्पनी से निकालना शुरू कर दिया। इसी बीच 26 अगस्त को श्रम विभाग ने नयी यूनियन की माँग यह कहते हुए ख़ारिज कर दी कि कर्मचारियों को 4 जून को हड़ताल पर नहीं जाना चाहिए था। उसने दूसरा तर्क यह दिया कि सभी वर्कर्स दूसरी यूनियन के सदस्य हैं। 29 अगस्त से कम्पनी के मैनेजमेंट ने नये गुड कंडक्ट शपथपत्र पर दस्तख़त कराने की शुरुआत कर दी। शपथपत्र पर हस्ताक्षर न करने पर 21 कर्मचारियों को नोटिस जारी कर दिया गया। 57 को निलम्बित कर दिया गया।[25] 12 जून, 2011 को कम्पनी के पीठासीन अध्यक्ष आर.सी.भार्गव ने द *टेलीग्राफ़* को दिये अपने साक्षात्कार में कहा की गुड़गाँव प्लांट के वर्कर्स पुराने हैं और कम्पनी के साथ बड़े हुए हैं। वे कम्पनी के नियमों के साथ काम करने के फ़ायदे जानते हैं। दूसरी तरफ़ मानेसर प्लांट नया है तथा इसमें काम करने वाले ज़्यादातर मज़दूर नये और युवा हैं। इनमें समझदारी की कमी है।

मारुति में अपेक्षित लक्ष्य और उत्पादन की गति दोनों ही बहुत ज़्यादा है। यहाँ उत्पादन की एक और विशेषता है काम की निरंतरता और कभी न रुकने वाला सिलसिला। मज़दूरों को आठ घंटे की

---

[24] पीयूडीआर (2011), : 14.

[25] ज्योत्स्ना सिंह और नकुल साहनी (2011) 'मारुति वर्कर्स स्पीक अबाउट देयर स्ट्राइक', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 46, अंक 33 : 12–13. और पीयूडीआर (2011), *मारुति-सफलता की असलियत-मज़दूरों का शोषण' एवं अन्य,* नयी दिल्ली.

शिफ़्ट में काम करना होता है। काम दो शिफ़्टों में होता है— एक सुबह तथा दूसरी शाम की। पहली शिफ़्ट सुबह 6:30 से शुरू होकर 4 बजे तक चलती है तथा दूसरी शिफ़्ट 4 बजे से शुरू होकर 12 बजे तक चलती है। सभी को 15 मिनट पहले आ कर मीटिंग में शामिल होना होता है। यदि वर्कर्स एक मिनट भी देरी से आता है तो उसे 'हाफ़ डे' माना जाता है जिसे वेतन से काट लिया जाता है। इसके अलावा उत्पादन का दबाव और उसका मज़दूरों पर पड़ने वाले प्रभाव मानेसर यूनिट के स्टैंडिंग ऑर्डर में अंतर्निहित है, जिसमें यह कहा गया है कि 'एक शिफ़्ट में काम करने वाला मज़दूर तब तक अपने काम को छोड़कर नहीं जाएगा, जब तक बाद की शिफ़्ट वाला मज़दूर आकर उसका काम न सँभाल ले। यदि अगली शिफ़्ट के मज़दूर अपने काम पर नहीं आते हैं तो पिछली शिफ़्ट के मज़दूर इस शिफ़्ट में भी अपना काम जारी रखेंगे।'[26] इस अतिरिक्त काम का मज़दूरों को ओवरटाइम नहीं दिया जाता। मज़दूर लगभग नौ घंटे काम करते हैं। इस दौरान उन्हें केवल सात मिनट का एक ब्रेक चाय पीने के लिए मिलता है। इसके पश्चात् तीस मिनट दोपहर के भोजन का समय मिलता है। मज़दूरी के लिहाज़ से स्थायी और ठेका मज़दूरों के वेतन में बहुत ज़्यादा अंतर है। हाल के वेतन-संशोधन के बाद यह और भी बढ़ गया है। प्रशिक्षु और ठेका मज़दूर को इस दौरान सात-आठ हज़ार रुपये मिलते थे। प्रशिक्षण समाप्त होने के पश्चात यह राशि 16,000 रुपये हो जाती है। इसमें आठ हज़ार रुपये तनख़्वाह है जिसमें डीए भी शामिल है। इसके अलावा 8,000 रुपये प्रोत्साहन भत्ता है। यदि कोई कर्मचारी किसी भी परिस्थिति में एक दिन की भी छुट्टी करता है तो उसके प्रोत्साहन भत्ते का 20 से 25 प्रतिशत हिस्सा काट लिया जाता है। महीने में चार छुट्टी होने पर पूरा प्रोत्साहन भत्ता काट लिया जाता है।[27] मज़दूर यहाँ कई श्रेणियों में विभाजित हैं : जूनियर, एसोसिएट जूनियर इत्यादि। एक जूनियर वर्कर्स को एसोसिएट जूनियर बनने में छह साल लगते हैं। 18 जुलाई, 2012 की घटना के बाद मारुति मैनैजमेंट ने स्थायी श्रमिकों के वेतन में बढ़ोतरी की परंतु ठेका श्रमिकों की स्थिति पहले जैसी ही है।

18 जुलाई, 2012 को मारुति के मानेसर प्लांट में घटित घटना के बाद से अब तक 147 श्रमिक जेल में हैं। इसके अलावा 546 स्थायी श्रमिकों और 1,800 ठेका श्रमिकों को प्लांट में हुई हिंसा के मद्देनज़र नौकरी से निकाल दिया गया। इसके अतिरिक्त 66 अन्य श्रमिकों के विरुद्ध अभी भी ग़ैर-ज़मानती वारंट लम्बित पड़े हैं।[28] इन श्रमिकों पर आईपीसी की धारा 302, 307, और 120 बी जैसे गम्भीर आरोप लगाये गये हैं। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इतनी संख्या में गिरफ़्तारी और पुलिस द्वारा की गयी दमनपूर्ण कार्यवाही के बावजूद आज भी इन श्रमिकों का संघर्ष मजबूती के साथ जारी है। संघर्ष के दौरान हुई हिंसा के बाद पुलिस की एफ़आईआर में सामान्यत: उस शिफ़्ट में काम कर रहे सभी श्रमिकों का नाम डाल कर साथ में अन्य जोड़ दिया जाता है ताकि प्रशासन और नियोक्ता को उत्पीड़न करने का ज़रिया मिल सके। कई बार धरने व रैलियाँ करने के बाद मारुति यूनियन की अस्थायी समिति ने मार्च, 2013 में यह तय किया कि वे अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठेंगे। इस भूख हड़ताल के दौरान उन्हें हरियाणा की विभिन्न खाप पंचायतों और अन्य स्थानीय समूहों का समर्थन प्राप्त होने लगा। कैथल में तक़रीबन 50 दिन तक हड़ताल पर बैठने के बाद 19 मई, 2013 को मज़दूरों ने मंत्री के घर के बाहर रैली व धरने का फ़ैसला लिया। परंतु 18 मई को ही पुलिस ने

---

[26] स्टैंडिंग ऑर्डर, मारुति उद्योग लिमिटेड, मानेसर यूनिट, 2007, सेक्शन 9 (8); और पीयूडीआर (2001) : 11.

[27] 'वाई दे स्ट्राइक, वाई यू शुड केयर' (2011), *तहलका मैगज़ीन*, खण्ड 8, अंक 38, 29 सितम्बर. और *मारुति-सफलता की असलियत*, वही और *द टेलिग्राफ़* (2011), सम्पादकीय, 12 जून.

[28] 'मर्चेंट ऑफ़ मिनेस रिप्रेसिंग वर्कर्स इन इण्डियाज़ न्यू इण्डस्ट्रियल बेल्ट : वायॅलेशंस ऑफ़ वर्कर्स ऐंड ट्रेड यूनियन राइट्स एट मारुति सुज़ुकी इण्डिया लिमिटेड' (2013), *इंटरनैशनल कमीशन फ़ॉर लेबर राइट्स*, न्यूयॉर्क : 3.

96 मज़दूर गिरफ़्तार कर लिए और पूरे इलाक़े में धारा 144 लागू कर दी। भीड़ को हटाने और मज़दूरों को वहाँ से भगाने के लिए उन पर लाठीचार्ज भी किया गया।

सरकार, मीडिया और समाज के एक बड़े हिस्से ने इस पूरी घटना को विकास पर पड़ रहे बुरे असर, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार के संदर्भ में ख़राब होती भारत की छवि और मारुति को हो रहे तथाकथित आर्थिक नुक़सान के आधार पर देखा और इस तरह पूरे संघर्ष से श्रमिकों के अधिकार और हितों को नज़रअंदाज़ कर दिया गया। 2012-2013 की मारुति उद्योग की वार्षिक रिपोर्ट देखने से यह पता चलता है कि इस संघर्ष और आर्थिक मंदी के बावजूद मारुति को 2011-12 की तुलना में लाभ हुआ। 2011-12 के 364,139 मिलियन रुपये की तुलना में वर्ष 2012-13 में कम्पनी का विशुद्ध व्यापार 444,003 मिलियन रहा है। यह वृद्धि तक़रीबन 22 प्रतिशत की है। साथ ही साथ 2011-12 में कम्पनी ने अपने घरेलू बाज़ार में 1,051,046 की तुलना में 2012-13 में 1,006,316 कारों की बिक्री की जो की पिछले वर्ष की तुलना में चार प्रतिशत वृद्धि अधिक है। दूसरी तरफ़ कम्पनी ने 2011-12 में 120,388 कारों के निर्यात की तुलना में वर्ष 2012-13 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 127,379 कारों का निर्यात किया।[29] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे विभिन्न रपटें जो कम्पनी के नुक़सान की बात कर रही थीं, वास्तव में उनका इरादा मज़दूरों के संघर्ष को बदनाम करना भर था।

मानेसर प्लांट में हुई घटना के बाद मज़दूरों का दमन ही नहीं हुआ, बल्कि जाँच के ख़त्म होने के बहुत पहले ही इसकी पूरी ज़िम्मेदारी मज़दूरों पर डाल दी गयी। सिर्फ़ प्रबंधन ने ही घटना के लिए मज़दूरों को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया, बल्कि पुलिस और प्रशासन ने भी यही किया। इतने बड़े पैमाने पर पुलिस ने कार्रवाई इसलिए की कि मारुति के मज़दूर, मानेसर और गुड़गाँव इंडस्ट्रियल एरिया के दूसरे मज़दूर भविष्य में किसी भी प्रकार के आंदोलन करने की हिम्मत न जुटा पाएँ। दूसरी तरफ़ इस संघर्ष की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यहाँ के स्थायी और ठेका मज़दूरों की बेमिसाल एकता रही है। यूनियन ने लगातार ठेका मज़दूरों के मुद्दे उठाए। दमन और श्रम विभाग की विफलता के बावजूद मज़दूरों ने दृढ़ता से यूनियन बनाने के अपने अधिकार के लिए संघर्ष जारी रखा है। मारुति एक उदाहरण है कि कैसे एक सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी के निजीकरण का सीधा-सीधा अर्थ है श्रम का अनौपचारिकीकरण जिसमें संगठित श्रमिकों को धीरे-धीरे ठेका और कैज़ुअल श्रमिक में तबदील करना है। यह इस बात का भी उदाहरण है कि निजीकरण मज़दूरों के संगठित ढँग से संघर्ष करने के अधिकार पर किस तरह रोक लगाता है।

ट्रेड यूनियन का अधिकार और उससे जुड़े सवाल

नयी अर्थनीतियों के तहत समय-समय पर सरकार द्वारा औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि और विकास के लिए श्रम की परिस्थितियों को और अधिक लचीला बनाने की बात कही जाती रही है। श्रम क़ानूनों को 1991 में घोषित की गयी आर्थिक नीति के अनुरूप ढालने के उद्देश्य के साथ द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग का भी गठन किया गया है। राजनीतिक रूप से संगठित मज़दूर वर्ग सरकार को श्रमिकों के दृष्टिकोण से सुरक्षात्मक श्रम क़ानूनों का उन्मूलन और श्रम को बाज़ार के अनुरूप लचीला बनाने से रोके हुए है। फिर भी राज्य ने ट्रेड यूनियन आंदोलन की कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाकर शासकीय और न्यायिक सक्रियता के ज़रिये श्रम बाज़ार को काफ़ी हद तक लचीला कर दिया है। ये सभी परिस्थितियाँ मारुति में भी मौजूद थीं। मारुति प्रबंधन ने मज़दूरों को संगठित होने से भी रोकने की

---

[29] मारुति उद्योग इण्डिया लिमिटेड की 2012-13 की वार्षिक रिपोर्ट में छपे संक्षिप्त लेख से; देखें, http:// economictimes. indiatimes.com/maruti-suzuki-india-ltd/directorsreport/companyid-vv}~®.cms

पुरज़ोर कोशिश की और उनके अधिकारों का उल्लंघन किया। प्रबंधन द्वारा मज़दूरों को अपनी स्वतंत्र यूनियन बनाने की इजाज़त न देना इण्डियन ट्रेड यूनियन ऐक्ट (1926) का उल्लंघन है। 2011 के मध्य से मज़दूरों का संघर्ष बहुत ज़्यादा बढ़ जाने से प्रबंधन ने संघर्ष में सक्रिय मज़दूरों को अपना निशाना बनाना शुरू किया। इस पूरी घटना से स्थापित क़ानून तथा उसके उचित क्रियान्वयन पर कई प्रकार के सवालिया निशान लगते हैं।

ट्रेड यूनियन ऐक्ट, 1926 के तहत ट्रेड यूनियन के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया से कम्पनी के मैनेजमेंट का कोई लेना-देना नहीं है यह काम संबंधित राज्य के श्रम विभाग का है। यह स्थिति राज्य समर्थित कम्पनी के मैनेजमेंट, संस्थाओं तथा श्रमिकों के असमान संबंध को दर्शाती है। ट्रेड यूनियन अधिनियम रजिस्ट्रार के समक्ष सदस्यता, आय और खातों का ब्योरा जमा करवाने के बारे में दिशा-निर्देश भी दिये गये हैं। लेकिन यह क़ानून किसी भी ट्रेड यूनियन को मज़दूरों की ओर से सौदेबाज़ी के लिए आधिकारिक मान्यता देने के सवाल पर पूरी तरह ख़ामोश है। यह फ़ैसला लेने का अधिकार मालिकों के विवेक पर छोड़ दिया गया है।[30] अर्थात् इसका मतलब यह है कि यदि किसी ट्रेड यूनियन का रजिस्ट्रेशन होता भी है तो भी वह इस बात के लिए काफ़ी नहीं है कि नियोक्ता द्वारा उस यूनियन को मज़दूरों के वैध प्रतिनिधि के तौर पर मान्यता दी ही जाए। नियोक्ता अगर चाहे तो मज़बूत या सही यूनियन को कमज़ोर करने के लिए अपने प्रति ज़्यादा वफ़ादार उसकी प्रतिद्वंद्वी यूनियन को सहायता दे सकता है। रामास्वामी का कहना है कि औपचारिक मान्यता के अभाव में श्रमिक संघ हड़ताल का सहारा लेकर अपनी मान्यता का दावा करता है।[31] 2001 में केंद्र सरकार *ट्रेड यूनियन (संशोधन) अधिनियम* लेकर आयी। इसमें कहा गया है कि यूनियनों की संख्या में आयी बाढ़ को रोका जाना चाहिए। इस नये अधिनियम के प्रभावी होने से यूनियनों के रजिस्ट्रेशन पर भी कुछ पाबंदी लगी। अगर मज़दूर यूनियनों में आना बंद कर दें तो ट्रेड यूनियनों को अपने एफ़िलिएशन (संबद्धता) के ख़त्म होने के ख़तरे का सामना करना पड़ सकता है। इस क़ानून के संदर्भ में विवेक छिब्बर ने बताया है कि यूनियनों को जब क़ानूनी आधार प्रदान किया गया था उस समय वास्तविक रूप से उन क़ानूनी मान्यताओं में नियोक्ता के दमन से सुरक्षा के प्रावधान नहीं थे। *ट्रेड यूनियन ऐक्ट,* 1926 केवल आपराधिक षड्यंत्र के मामलों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। 1947 में इस ऐक्ट में एक संशोधन किया गया जो श्रमिकों को ग़लत प्रकार से हो रहे लेबर कार्यों के विरुद्ध सुरक्षा से संबंधित था, परंतु यह ऐक्ट कभी प्रभावी नहीं हुआ। कैबिनेट ने इस संशोधित ऐक्ट के संदर्भ में प्रभावी सूचना पत्र जारी नहीं किया। साथ ही यह भी बताया कि इसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि किसी भी प्रकार की हड़ताल या लॉकआउट पर जाने से चौदह दिन पहले नोटिस देना होगा तभी हड़ताल क़ानूनी रूप से वैध मानी जाएगी। सरकार अपने पास यह अधिकार रखती है कि वह लोक हित के संदर्भ में दोनों पक्षों के बीच समस्या के हल के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभा सकती है।[32]

श्रमिकों के अधिकारों पर हमला भाजपा नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार (1998-2004) के दौरान एक नये स्तर पर पहुँच गया था, जिसने मज़दूरों को सुरक्षा प्रदान करने वाले श्रम क़ानूनों पर हमला किया। सरकार ने श्रम सुधारों के लिए दो ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिसमें पहला; नियोक्ताओं, लोक उद्यम के स्थायी सम्मेलन के प्रतिनिधित्व वाले, विशेष रूप से

---

[30] ए.एस. माथुर और जे.एस. माथुर (1962), *ट्रेड यूनियन मूवमेंट इन इण्डिया,* चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद : 131.
[31] शरित के. भौमिक (2008), 'ट्रेड यूनियनों की सदस्यता : उद्देश्य क्या है?', *श्रमजीवी,* अंक 1-2, जनवरी-जून, नयी दिल्ली : 10.
[32] घनश्याम शाह (2004), *सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया : ए रिव्यू ऑफ़ लिटरेचर,* सेज, नयी दिल्ली : 179.

सार्वजनिक क्षेत्र के नियोक्ताओं ने *कॉन्ट्रेक्ट लेबर ऐक्ट* के सेक्शन 10 को समाप्त करने की बात कही, जो कॉन्ट्रेक्ट लेबर पर प्रतिबंध लगाता है। दूसरा; जिसमें उन्होंने यह भी दबाव बनाया कि इंडस्ट्रियल *डिस्प्यूट ऐक्ट* के अध्याय VI बी को बदल कर यह बात कही जाए कि 300 श्रमिकों से कम किसी भी यूनिट को बिना सरकार की आज्ञा के बंद किया जा सके।[33]

ट्रेड यूनियन की एक समस्या श्रम के बढ़ते अनौपचारिकीकरण के कारण असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे मज़दूरों की संख्या में हो रही वृद्धि भी है। संगठित क्षेत्र में श्रमिकों के लिए क़ानूनों का कोई अभाव नहीं है। समस्या अत्यधिक क़ानूनों और उसका क्रियान्वयन करने वाली एजेंसियों के बीच उचित तालमेल की है। इस क्षेत्र के श्रमिक भी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। वास्तव में भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास बताता है कि सामान्य रूप में श्रमिक संघों की उत्पत्ति और विकास विशेष रूप में, सामाजिक या सांस्कृतिक की अपेक्षा राजनीतिक व्याख्या की माँग करता है। श्रमिक संघों का विकास नियोक्ताओं की सहयोगशीलता (इच्छाओं) और राज्य की उनके प्रति सहनशीलता द्वारा अधिकांशतः निर्धारित और सम्भवतः उस पर निर्भर करता है। यह न तो वर्ग चेतना की किसी विशिष्ट अवस्था के विकास को इंगित करता है और न ही समाजवाद के उद्‌भव की पूर्वापेक्षा करता है। श्रमिक संगठन के लिए पूँजीवादी सहनशीलता की उपलब्धि बहुधा श्रमिकों, श्रमिक संघों और राज्य के बीच के बदलते हुए संबंधों के परिणामों द्वारा निर्धारित होती है। श्रमिक राजनीतिक दबाव और मोल-तोल के द्वारा पूँजीवादी सहनशीलता की सीमा को बढ़ा पाते हैं।[34]

निष्कर्ष

कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने मारुति और उसके अंदर चल रहे श्रमिक संघर्ष और मैनेजमेंट के साथ मज़दूरों के तनावपूर्ण संबंधों पर अपनी स्वतंत्र रपट प्रस्तुत की है। इनमें इस पूरे प्रकरण की ज़िम्मेदारी श्रम की शोषणकारी परिस्थितियों पर डाली गयी है। लेकिन सार्वजनिक जीवन में इस संघर्ष को औद्योगिक विकास, आर्थिक प्रगति में रुकावट, मारुति को हो रहे आर्थिक नुक़सान, विदेशों में भारत की छवि ख़राब होने जैसी बातों के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। जबकि असलियत यह है कि इस संघर्ष ने भारत के अंदर पूँजी और श्रम के असमान और शोषणकारी चेहरे को उजागर किया है। बाज़ार में श्रम की बदलती संरचना को देखते हुए ये ज़रूरी हो गया है कि संगठित क्षेत्र में काम कर रहे संगठन असंगठित और संगठित दोनों क्षेत्रों में काम कर रहे श्रमिकों को संगठित करने का प्रयास करें। लोकतांत्रिक एवं राजनीतिक अधिकारों, विकास और मज़दूर संगठनों के मुद्दों पर पूँजी और राज्य के बीच खुलेआम मिलीभगत के संदर्भ में सभी ट्रेड यूनियनें राजनीतिक दलों की पहचान को छोड़कर श्रमिकों के हितों के लिए संघर्ष करने में एकजुट हों। अर्थात् ट्रेड यूनियन संगठन ऐसा होना चाहिए जो राजनीतिक दलों से तो स्वतंत्र हो लेकिन खुद गहरे तौर पर राजनीतिक हो और मज़दूर वर्ग की राजनीति अभिव्यक्त करता हो।

इकाई या फ़ैक्टरी, यूनियन के स्तर पर नये उभरते हुए आंदोलनों में कौन सी ऐसी सम्भावना मौजूद है, जो भविष्य के श्रमिक आंदोलनों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकती है और उसका विकास किस प्रकार किया जा सकता है? किस प्रकार ऐसा आंदोलन एक ओर तो ग़ैर-संजीदा रुझानों और दूसरी ओर थोड़े आर्थिक लाभों को हासिल करने के लिए चलाये जाने वाले परम्परागत यूनियनवादी

[33] विवेक छिब्बर (2003), *लॉक्ड इन प्लेस : स्टेट-बिल्डिंग ऐंड लेट लिबरलाइज़ेशन इन इण्डिया,* प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन : 116-126.

[34] घनश्याम शाह, वही : 180-210.

कार्यक्रमों की गिरफ़्त में फँसने से बच सकता है? किस प्रकार एक आंदोलन श्रमिक वर्ग की व्यापक एकजुटता की ओर, और सही दिशा में विकसित हो सकता है? इन बातों को तय करने की ज़िम्मेदारी श्रमिकों के सचेत और ट्रेड यूनियन के नेताओं की है। वे ऐसा इन आंदोलनों में हिस्सेदारी करते हुए ही कर सकते हैं। आज यूनियन के स्तर पर शुरू होने वाला कोई भी आंदोलन शुरू से ही कठिन चुनौतियों के सामने खड़ा होता है। सिर्फ़ एक फ़ैक्टरी के स्तर पर उठ खड़े होने वाले आंदोलनों को, जो कि प्राय: सिर्फ़ स्थायी या ठेका-कैजुअल श्रमिकों का होता है उसे, मालिक, सरकार और प्रशासन की संयुक्त ताक़त का मुक़ाबला करना होता है। इसी के साथ-साथ जिन मुद्दों पर ये आंदोलन हो रहे हैं, मसलन ठेकेदारी को समाप्त करना, श्रम क़ानूनों को लागू करवाना, यूनियन बनाने और उसे स्वतंत्र बनाये रखने की माँग वग़ैरह, जिनका संबंध किसी एक फ़ैक्टरी के श्रमिकों से नहीं है। यह व्यापक श्रमिक आंदोलन का हिस्सा है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के मॉडल ने आर्थिक सुधार से पहले के काल की तुलना में उत्तर-सुधार समय में श्रमिकों के विरुद्ध वातावरण को तैयार करने में सहायता की है। नव उदारवादी पूँजी के बाज़ार में एक तरफ़ जहाँ श्रमिकों व ट्रेड यूनियनों पर विकास, श्रम क़ानूनों को लचीला बनाने, ट्रेड यूनियन की गतिविधियों पर अंकुश लगाने जैसी बातों से चौतरफ़ा हमला किया जा रहा है वहीं दूसरी तरफ़ बढ़ते बाज़ार में एक अलग प्रकार के श्रम (अनौपचारिक श्रम) की बढ़ती माँग ने भी ट्रेड यूनियनों के समक्ष चुनौतियों को उत्पन्न किया है, क्योंकि एक ऐसी स्थिति में जहाँ केवल सात प्रतिशत संगठित और बाक़ी 93 प्रतिशत असंगठित श्रमिक हों, ट्रेड यूनियनों के लिए इनको संगठित करना आसान नहीं है।

आज श्रमिक वर्ग की बदलती परिस्थितियों के संदर्भ में इस क्षेत्र में एक नये ट्रेड यूनियनवाद की आवश्यकता है जो श्रमिक वर्ग को राजनीतिक तौर पर जागरूक बनाये। इसके अलावा श्रमिक वर्ग के इस असंगठित संघर्ष को एक राजनीतिक संरचना के माध्यम से ही लड़े जाने की आवश्यकता है। यह राजनीतिक संरचना कुछ और नहीं बल्कि ट्रेड यूनियन है, जिसको संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्र के श्रमिकों के मुद्दों को उठाना होगा। वे सभी संवैधानिक-क़ानूनी अधिकार जिन्हें एक लम्बे संघर्ष के बाद श्रमिकों ने राज्य से प्राप्त किये थे, वे सभी अधिकार अब धीरे-धीरे उनसे क़ानूनों में संशोधनों, न्यायपालिका के निर्णयों या विकास की नीतियों के नाम पर सिलसिलेवार तरीक़े से छीने जा रहे हैं। भारतीय बाज़ारों में पूँजी का प्रसार बढ़ा है और साथ में पूँजी एवं श्रम के संबंधों के बढ़ते अनौपचारीकरण ने न केवल श्रमिकों के हितों पर कुठाराघात किया है बल्कि यूनियन के अधिकारों को भी सीमित किया है। साथ ही आजकल ट्रेड यूनियन का नाम सामने आते ही लोगों के मन में इसके बारे में एक बनी बनाई विचारधारा जैसे उग्र ट्रेड यूनियनवाद, राजनीतिक और सामाजिक प्रतिद्वंद्विता, काम करने की वचनबद्धता का अभाव, ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार, और नियोक्ता के समक्ष अतार्किक माँग रखने इत्यादि के संदर्भ में नकारात्मक छवि के तौर पर उभर कर सामने आती है। इस तरह की नकारात्मक छवि के कारण ट्रेड यूनियन को आम जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इन बदली हुई परिस्थितियों और पूँजी एवं श्रम के संदर्भ में उभर रहे नये परिप्रेक्ष्यों में ट्रेड यूनियनों एवं श्रमिक संघर्षों एवं औद्योगिक संबंधों में नियोक्ता एवं श्रमिक के बीच स्थापित संबंध को नये सिरे से समझने की आवश्यकता है।

---

[35] रोहणी हेंसमैन (2010), 'लेबर ऐंड ग्लोबलाइज़ेशन : यूनियन रिस्पांसेज़ इन इण्डिया', *ग्लोबल जर्नल,* खण्ड 1, अंक 1 : 112-131.

संदर्भ

अनिल सद्गोपाल और श्याम बहादुर 'नम्र' (सम्पा.) (1993), *संघर्ष और निर्माण : शहीद शंकर गुहा नियोगी और उनका नये भारत का सपना,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

ई. ए. रामास्वामी (1977), *द वर्कर्स ऐंड हिज़ यूनियन,* एलाइड पब्लिकेशन, दिल्ली.

ए.एस. माथुर और जे.एस. माथुर (1962), *ट्रेड यूनियन मूवमेंट इन इण्डिया,* चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद : 131.

कमला शंकरन, 'लेबर लॉज ऐंड द वर्ल्ड ऑफ़ वर्क', कमला शंकरन तथा उज्ज्वल कुमार सिंह (सम्पा.) (2008), *टुवर्ड्स लीगल लिटरेसी : ऐन इंट्रोडक्शन टू लॉ इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

कल्याण सन्याल (2007), *रिथिंकिंग कैपिटलिस्ट डिवेलेपमेंट : प्रिमिटिव एक्युमिलेशन, गवर्नमेंटेलिटी ऐंड पोस्ट-कोलोनियल कैपिटलिज़्म,* रॉटलेज़, नयी दिल्ली.

के.आर. श्याम सुंदर (2013), 'इंडस्ट्रियल वायलेंस ऐंड लेबर रिफ़ॉर्म', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 48, अंक 41.

घनश्याम शाह (2004), *सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया : ए रिव्यू ऑफ़ लिटरेचर,* सेज, नयी दिल्ली.

ज्योत्स्ना सिंह और नकुल साहनी (2011) 'मारुति वर्कर्स स्पीक अबाउट देयर स्ट्राइक', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड 46*, अंक 33; और 'मारुति-सफलता की असलियत-मज़दूरों का शोषण' (2011), पीयूडीआर एवं अन्य.

जी.डी.एच. कोल (1953), *ऐन इंट्रोडक्शन टू ट्रेड यूनियनिज़म,* जॉर्ज ऐलन ऐंड अनविन, ग्रेट ब्रिटेन.

द *ट्रेड यूनियन ऐक्ट* (1926), बेयर ऐक्ट (2010), यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नयी दिल्ली.

दीपेश चक्रवर्ती (1989), *रिथिंकिंग वर्किंग क्लास हिस्ट्री : बंगाल 1890-1940,* ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

नैशनल कमीशन फ़ॉर एन्टरप्राइजेज़ इन द अनऑर्गनाइज़्ड सेक्टर (2008), *रिपोर्ट ऑन डेफ़िनेशनल ऐंड स्टेटिकल इश्यूज़ रिलेटिंग टू द इनफ़ॉर्मल इकॉनॉमी,* भारत सरकार, नयी दिल्ली (अध्याय-2).

पैरी एंडरसन (1978), 'द लिमिट्स ऐंड पॉसिबिलिटीज़ ऑफ़ ट्रेड यूनियन एक्शन', टॉम क्लार्क और लौरी कलेमेन्टस (सम्पा.), *ट्रेड यूनियन अंडर कैपिटलिज़्म,* द हारवेस्टर प्रेस, ससेक्स.

'मर्चेंट ऑफ़ मिनेस रिप्रेसिंग वर्कर्स इन इण्डियाज़ न्यू इण्डस्ट्रियल बेल्ट : वायलेशंस ऑफ़ वर्कर्स ऐंड ट्रेड यूनियन राइट्स एट मारुति सुजुकी इण्डिया लिमिटेड' (2013), *इंटरनैशनल कमीशन फ़ॉर लेबर राइट्स,* न्यूयॉर्क.

मारुति उद्योग इण्डिया लिमिटेड की 2012-13 की वार्षिक रिपोर्ट में छपे संक्षिप्त लेख से; देखें, http:// economic-times.indiatimes.com/maruti-suzuki-india-ltd/directorsreport/companyid-vv}~®.cms

रखहारी चैटर्जी (1976), *यूनियन पॉलिटिक्स ऐंड द स्टेट : ए सर्वे ऑफ़ इंडियन लेबर पॉलिटिक्स,* साउथ एशियन पब्लिशर, नयी दिल्ली.

रोहणी हेंसमैन (2010), 'लेबर ऐंड ग्लोबलाइज़ेशन : यूनियन रिस्पांसेज़ इन इण्डिया', *ग्लोबल जर्नल,* खण्ड 1, अंक 1.

रोहणी हेंसमैन (2011), *वर्कर्स, यूनियन ऐंड ग्लोबल कैपिटलिज़म : लैसंस फ्रॉम इण्डिया,* तूलिका बुक्स, नयी दिल्ली.

'वाई दे स्ट्राइक, वाई यू शुड केयर' (2011), *तहलका मैगज़ीन,* खण्ड 8, अंक 38, 29 सितम्बर. और 'मारुति-सफलता की असलियत', वही और द *टेलिग्राफ़* (2011), सम्पादकीय, 12 जून.वी.बी. सिंह (1965), 'ट्रेड यूनियन मूवमेंट',

विवेक छिब्बर (2003), *लॉक्ड इन प्लेस : स्टेट-बिल्डिंग ऐंड लेट लिबरलाइज़ेशन इन इण्डिया, प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस,* प्रिंस्टन.

वी.बी. सिंह (सम्पा.) *इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया 1857-1957,* एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई.

वी.बी. कार्णिक (1966), *इण्डियन ट्रेड यूनियंस : ए सर्वे,* मनकटलस, बम्बई.

शरित के. भौमिक (2008), 'ट्रेड यूनियनों की सदस्यता : उद्देश्य क्या है?', *श्रमजीवी,* अंक 1–2, जनवरी–जून, नयी दिल्ली.

शरित के. भौमिक (1966), 'स्टेट इंटरवेंशन ऐंड द वर्किंग क्लास मूवमेंट', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 31, अंक 52.

पीपॅल्स यूनियन फ़ॉर डेमॉक्रेटिक राईट्स (पीयूडीआर) (2013), 'शोषण का पहिया : मारुति सुजुकी इण्डिया लिमिटेड में मज़दूर संघर्ष और अधिकारों का हनन' नयी दिल्ली.

सिडनी वेब ऐंड बेट्रिस वेब (1956), द *हिस्ट्री ऑफ़ ट्रेड यूनियनिज़म,* लांगमैन्स ग्रिन ऐंड कम्पनी, लंदन.

हेरॉल्ड क्रॉउच (1979), *इण्डियन वर्किंग क्लास,* सचिन पब्लिकेशन, अजमेर.